नागरी पत्रिका

वर्ष ४० | १५ मई २००७ - १४ जून २००७ | अंक २.

संस्थापक संपादक
स्व. पं. सुधाकर पांडेय

●

संपादक मंडल
प्रो. विजयपाल सिंह
डॉ. शितिकंठ मिश्र
पं. विश्वंभरनाथ द्विवेदी
डॉ. शकुंतला शुक्ल
प्रो. श्रीनिवास पांडेय
पं. हिमांशु उपाध्याय
डॉ. कुसुमाकर पांडेय

●

संपादक
डॉ. पद्माकर पांडे

●

शुल्क
वार्षिक रु. ६०.००
प्रति अंक रु. ६.००

●

दिल्ली कार्यालय
पं. सुधाकर पांडेय नागरी भवन
ए-१६, अरुणा आसफ अली मार्ग
नई दिल्ली-११००६७

●

वाराणसी कार्यालय
नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
पिन कोड - २२१००१

●

टेलीफोन
वाराणसी - २३३१२७७, २३३१४८८
फैक्स- ०५४२-२३३१४८८
नई दिल्ली- २६५६५८७२, २६५६५८४७
२६८६२६६६, फैक्स-०११-२६५११६७४
ई मेल : Nagri @ del.3. vsnl.net.in

आरत काह न करइ कुकरमू

१८५७ में भारत के स्वतंत्रता संघर्ष का शुभारंभ माना जाता है। स्वतंत्रता जीवन जीने का मूल मंत्र है। यह एक ऐसा ध्रुव सत्य है जो जीवन को संयम और गति देता है। अनेक नौजवानों ने इस अवधि में देश को स्वतंत्र बनाने का सार्थक व रचनात्मक स्वप्न देखा क्योंकि स्वतंत्रता के महत्व को जो समझते हैं वह इसका परित्याग किसी भी मूल्य पर नहीं कर सकते। कहना न होगा कि स्वतंत्रता प्राप्ति का स्वप्न संजोए कई जांबाज काल कवलित हो गए। राजा राममोहन राय ने स्वतंत्रता का अर्थ समझा था और देशवासियों को इसका अर्थ समझाने के लिए उन्होंने जो भी महत् उद्यम किए वह किसी से छिपा नहीं है। आज के युग में ऐसा कर पाना तो दूर, यह सोच पाना भी बड़ी बात है। हमारे शूरवीर, स्वतंत्रता सेनानी सदैव बड़े से बड़ा काम और नाम करने के दीवाने थे और इस नाम तथा काम को करने के लिए सहर्ष उंन्होंने अपने प्राणों की आहुति दी, इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता। राजा साहब धन्य हैं कि उन्होंने इस स्वतंत्रता-चिराग को ब्रिटेन के संसद तक पहुंचाया और इस पर एक अच्छी बहस कराकर ही शांत हुए। धन्य हैं राजा साहब जिन्होंने स्वतंत्रता का मूल्य स्वयं समझा और देशवासियों को इसका अर्थ समझाया तभी जाकर आज हम आधिकारिक तौर पर स्वयं को स्वतंत्र कह रहे हैं, वरना इसके विपरीत राष्ट्र में मुगल सल्तनतियां के अंतिम चिराग बहादुर शाह जफर ने न चाहकर भी कह ही डाला कि-

कितना है बदनसीब जफर दफ्न के लिए।
दो गज जमीं भी न मिली कूए यार में।।

स्वतंत्रता और पयामें आजादी का जश्न बयां नहीं किया जा सकता क्योंकि इसका अनुभव किया जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी कह ही देते

हैं कि-

परा‍धीन सपनेहु सुख नाहीं।

१८५७ में जो कृत्य हुए उससे आशाएं बलवती हुईं परंतु उत्तर 'ढाक के तीन पात' ही बनकर रह गए। व्यक्ति को उसकी आवश्यकता गुलाम बनाती है जितना ही वह पदार्थ से विरक्त होता है उतना ही वह सुखी बनता जाता है। यही जीवन जीने की सार्थकता है। हमारा यह प्रयास होना चाहिए कि हम किसी भी वातावरण में अपना समय व्यतीत करें परंतु यह कदापि न भूलें कि स्वतंत्रता पाने के लिए किसी और की स्वतंत्रता का हनन न करें। जब देंगे, जितना देंगे उससे कम नहीं अधिक ही पाएंगे।

जय हिंदी, जय भारत।

- संपादक

इस अंक में

१. *संपादकीय* १-२
२. *पं. सुधाकर पाण्डेय की कविताएँ*
   - पं. सुधाकर पाण्डेय ३-४
३. *जायसी की काव्य-दृष्टि*
   - भारतेन्दु कुमार पाठक ५
४. *ग्रहों से उत्सर्जित रश्मियाँ*
   - ज्योति राय ६-७
५. *संस्कृति निर्माण में भाषा एवं साहित्य का योगदान*
   - डा. अर्चना उपाध्याय ८-११
६. *काशी के संन्यासी भी पीछे नहीं रहे स्वतंत्रता संघर्ष के बलिदानों में*
   - अमित कुमार सिंह १२-१३
७. *कबीर और नानक के दार्शनिक सिद्धांत*
   - स्कन्ध जी पाठक १४-१६
८. *मधुशाला पर एक दृष्टिपात*
   - मुदिता श्रीवास्तव १७-१६
६. *गंगा* (कविता)
   - डा. उमाशंकर चतुर्वेदी 'कंचन १६
१०. *मोहन राकेश की कहानियों में संवेदना और शिल्प*
   - सरोज कुमारी २०-२२
११. *पर्यावरण प्रबंधन और जीवन की गुणवत्ता में साहित्य का योगदान*
   - डा. अखिलेश कुमार शर्मा 'शास्त्री' २३-२४
१२. *प्रसाद के कथा साहित्य में राष्ट्रीयता*
   -निशा राय २५-२७
१३. कृष्ण भक्ति के प्रणेता : महाकवि सूरदास
   - जाह्नवी पांडेय २८-३१
१४. मन्नू भंडारी के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श
   - श्रीमती निर्मला सिंह ३२-३३
१५. संस्कृति का संवेदनामूलक अर्थशास्त्र
   - आरती कुमारी ३४-३५
१६. गजल
   - धर्मेन्द्र गुप्त 'साहिल' ३५
१७. ठाकुर की काव्यशैली
   - डा. अनुकूल चंद राय ३६-३७
१८. गंगा की बात : सात कुंडलियां
   - डा. रामअवतार पाण्डेय ३८
१६. पुस्तक समीक्षा ३६
२०. सभा समाचार ४०

●

लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। संपादक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संस्कृति निर्माण में भाषा एवं साहित्य का योगदान

- डा. अर्चना उपाध्याय

भाषा चाहे कोई भी हो, उसका हमेशा एक दुहरा चरित्र होता है : यह संप्रेषण का माध्यम होने के साथ-साथ संस्कृति की वाहक भी होती है। अंग्रेजी का ही उदाहरण लें। ब्रिटेन के लोगों के लिए और खासतौर पर अंग्रेजों के लिए यह न केवल संप्रेषण का माध्यम है बल्कि उनकी संस्कृति और इतिहास की वाहक भी है।

संप्रेषण माध्यम के रूप में भाषा के तीन तत्व होते हैं। पहली चीज तो यथार्थ जीवन की भाषा है। अर्थात् वह तत्व जो भाषा, उसकी व्युत्पत्ति और विकास की समूची अवधारणा की बुनियाद से जुड़ा हुआ है। तात्पर्य उन संबंधों से है, जो श्रम की प्रक्रिया के दौरान एक दूसरे के साथ कायम होते हैं, व्यक्तियों, समुदायों अथवा रोटी, कपड़ा और मकान जैसे बुनियादी जरूरत की चीजों को पैदा करने के काम में लगे लोगों के बीच बनते हैं। मानव समुदाय श्रम के विभाजन के जरिए उत्पादन में सहयोग की भावना के साथ अपने ऐतिहासिक अस्तित्व की शुरूआत करता है। इसका सबसे सरल रूप किसी परिवार में पुरुष, महिला और बच्चे के संदर्भ में देखा जा सकता है। उत्पादन की विभिन्न शाखाओं के बीच अपेक्षाकृत जटिल विभाजन हम उन लोगों के दरम्यान देख सकते हैं जो शिकार के काम में लगे हैं अथवा फलों को बीनकर इकट्ठा करते हैं। इसके बाद हम ज्यादा जटिल विभाजन आधुनिक कारखानों में देख सकते हैं, जहाँ कोई एक उत्पादन मसलन कमीज या जूता अनेक हाथों और दिमागों का परिणाम है। इसका मतलब उत्पादन एक सहकारी काम है, एक संवाद है, एक भाषा है, मानव समुदाय के बीच संबंधों की अभिव्यक्ति है और यह खास तौर पर मानवीय कृत्य है।

संप्रेषण के रूप में भाषा का दूसरा पहलू बोलने की क्रिया से संबंधित है। तात्त्विक चिन्ह मनुष्य के जीवनसाधनों के उत्पादन के दौरान एक दूसरे के बीच संबंध कायम करने के लिए संवाद के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। वाचिक चिन्हों के रूप में भाषा की यह प्रणाली उत्पादन को संभव बनाती है। मानव समुदायों के बीच बोले गए शब्दों का संबंध वही है जो मनुष्य और प्रकृति के बीच हाथ या पैर का संबंध है। उपकरणों के जरिए मनुष्य के हाथ मानव समुदाय और प्रकृत के बीच मध्यस्थता का काम करते हैं और वास्तविक जीवन की भाषा का निर्माण करते हैं। बोले गए शब्द मनुष्य और मनुष्य के बीच मध्यस्थता का काम करते हैं और बोलचाल की भाषा का निर्माण करते हैं।

इसका तीसरा पहलू लिखित चिह्नों से संबंधित है जो बात बोली जाती है उसी की नकल लिखित शब्द करते हैं। हाथ और बोले हुए शब्दों के जरिए संप्रेषण के रूप में भाषा के जिन दो पहलुओं का जिक्र किया गया है उनके मुकाबले लिखित पहलू का विकास ऐतिहासिक रूप से बाद में हुआ। ध्वनियों के चाक्षुष प्रतीकों का प्रतिनिधित्व लेखन में होता है।

अधिकांश समाजों में लिखने और बोलने की भाषाएं इस अर्थ में एक ही हैं कि वे एक दूसरे का प्रतिनिधित्व करती हैं। कागज पर जो लिखा है उसे दूसरा व्यक्ति पढ़ सकता है और उसे उसी रूप में ग्रहण कर सकता है जैसा बोलने से वह ग्रहण करता है। ऐसे समाज में किसी बच्चे के लिए संप्रेषण के रूप में भाषा के तीनों पहलुओं के बीच एक व्यापक सामंजस्य है। *प्रकृति अथवा किसी व्यक्ति के साथ उसका अंतर्संबंध विकसित करने के लिए इन्हीं लिखित और वाचिक प्रतीकों का प्रयोग करना होगा।*

लेकिन इसका एक व्यापक पहलू भी है। मानव समुदायों के बीच संप्रेषण संस्कृति के विकास की प्रक्रिया और उसका आधार भी है। बार बार एक ही तरह की क्रियाएं करते रहने से एक खास तरह की गति, लय, आदत, प्रवृत्ति, अनुभव और ज्ञान का निर्माण होता है। इन अनुभवों को अगली पीढ़ी को सौंप दिया जाता है और प्रकृति तथा खुद के लिए वह उसकी विरासत का आधार बन जाती है। मूल्यों का एक क्रमिक संचयन होता है जो समय के साथ स्वयंसिद्ध सत्य का रूप ले लेते हैं और उनके आंतरिक तथा वाह्य संबंधों में सही

और गलत, अच्छे और बुरे, सुन्दर और असुन्दर, साहस और कायरता, उदारता और कृपणता की अवधारणा को संचालित करते हैं। समय बीतने के साथ यह एक जीवन पद्धति हो जाती है जो अन्य जीवन पद्धतियों से भिन्न होती है। इन्हीं से एक विशिष्ट संस्कृति में वे सभी नैतिक और सौंदर्यबोधक मूल्य समाहित होते हैं जिनके जरिए विश्व में हम अपने स्थान को निर्दिष्ट करते हैं। जन समुदाय की अस्मिता और मानव समुदाय का सदस्य होने के विशिष्ट बोध का आधार ये मूल्य ही हैं और इन सारे मूल्यों के वाहक का काम भाषा करती है। एक संस्कृति के रूप में भाषा इतिहास में जनता के अनुभवों का सामूहिक स्मृति भण्डार (मेमोरी बैंक) है। संस्कृति उस भाषा से लगभग पूरी तरह अविभेद्य है जो इसकी उत्पत्ति, निर्माण, विकास, अभिव्यक्ति और यथार्थ में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संप्रेषण का काम करती है।

संस्कृति के रूप में भाषा के तीन महत्वपूर्ण पहलू भी हैं। संस्कृति इतिहास का एक उत्पाद है और साथ ही इतिहास को व्यक्त करने का माध्यम भी है। दूसरे शब्दों में कहें तो संपत्ति के निर्माण और उसके नियंत्रण के संघर्ष में एक दूसरे के बीच, मानव समुदायों के बीच, संप्रेषण की अभिव्यक्ति भी संस्कृति के जरिए होती है। लेकिन संस्कृति उस इतिहास को यूं ही व्यक्त नहीं करती, वह प्रकृति और पोषण जगत के चित्रों और बिंबों के निर्माण के जरिए उसे व्यक्त करती है। इस प्रकार संस्कृति के रूप में भाषा का जो दूसरा पहलू है वह किसी बच्चे के मस्तिष्क में बिंब निर्माण करने का एक माध्यम भी है। व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से एक जनसमूह के रूप में अपने होने की हमारी समूची अवधारणा उन बिंबों और प्रतीकों पर आधारित है जो प्रकृति के साथ हमारे वास्तविक संबंधों के एकदम अनुरूप भी हो सकती है और नहीं भी हो सकती है। इस प्रकार संस्कृति के रूप में भाषा मेरे और मेरे 'स्व' के बीच एक मध्यस्थ का काम करती है- मेरे और दूसरे के बीच, मेरे और प्रकृति के बीच भी उसकी यही भूमिका है और यही बात हमें संस्कृति के रूप में भाषा के तीसरे पहलू के करीब ले जाती है। विश्व के बारे में और यथार्थ के बारे में उन बिम्बों को वाचिक और लिखित शब्दों के जरिए संप्रेषित करने का काम भाषा करती है। दूसरे शब्दों में कहें तो बोलने की क्षमता ध्वनि को एक ऐसे ढंग से व्यवस्थित करने की क्षमता जो मानव समुदाय के बीच आपसी समझ विकसित करे, सार्वभौम है। यही भाषा की विश्वजनीनता अथवा सार्वभौमिकता है जो मानव समुदाय के विशिष्टता के साथ जुड़ी हुई है। यह प्रकृति और मनुष्य के बीच संघर्ष की सार्वभौमिकता के अनुरूप है। लेकिन ध्वनियों, शब्दों, वाक्यांशों तथा वाक्यों के शब्दक्रमों की विशिष्टता और इन्हें क्रमबद्ध रूप देने के खास अंदाज अथवा नियमों से एक भाषा की दूसरी भाषा से भिन्नता का पता चलता है। इस प्रकार कोई विशिष्ट संस्कृति, भाषा के जरिए अपनी सार्वभौमिकता में नहीं बल्कि एक निश्चित इतिहास से सम्पन्न निश्चित समुदाय की विशिष्टता के रूप में संप्रेषित होती है। लिखित साहित्य और मौखिक साहित्य वे प्रमुख साधन हैं जिनके जरिए कोई खास भाषा उस संस्कृति विशेष में निहित खूबियों को दुनिया के सामने प्रकट करती है।

इस प्रकार संप्रेषणीयता और संस्कृति के रूप में भाषा एक दूसरे का उत्पाद है। संप्रेषणीयता से संस्कृति का निर्माण होता है : संस्कृति संचार का एक साधन है। भाषा संस्कृति की वाहक है और संस्कृति अपने मौखिक और लिखित साहित्य के जरिए मूल्यों के उस समूचे पुंज को लेकर चलती है जिसके जरिए हम स्वयं से साक्षात्कार करते हैं और विश्व में अपनी स्थिति का एहसास करते हैं। लोग किस तरह खुद से अपना साक्षात्कार करते हैं यह बात इस तथ्य से प्रभावित होती है कि लोग किस दृष्टि से अपनी संस्कृति, अपनी राजनीति और प्रकृति तथा अन्य चीजों के साथ अपने समूचे संबंध को देखते हैं। इस प्रकार मानव समुदाय के ऐसे समूह के रूप में जिसका एक खास स्वरूप, खास इतिहास और विश्व के साथ खास संबंध है, हमारे साथ भाषा का एक अविभाज्य संबंध है।

मनुष्य की बौद्धिक और कल्पनाशील क्रिया के प्रतिफल के रूप में साहित्य शब्दों और बिंबों के जरिए किसी समुदाय के होने और उसके न होने और उसके अस्तित्व में आने की प्रक्रिया के बीच चलने वाले तनावों, द्वंद्वों, अंतर्विरोधों को मूर्त रूप देता है। साहित्य में किसी जाति-समाज एवं राष्ट्र के वे सभी भाव एवं विचार विद्यमान रहते हैं जो एक सुदीर्घ परंपरा से प्रचलित होते हैं, जिनकी जड़ें अतीत के गर्भ में रहती हैं तथा जो उस जाति, समाज एवं राष्ट्र के क्रमिक विकास से भी

संबंधित होते हैं। इसका कारण यह है कि साहित्य को सदैव परंपरा से प्रेरणा मिलती है, वह परंपरा से ही विचारों को ग्रहण करता है और परंपरा ही उसे भावों का समुचित भण्डार प्रदान करती है। इस परंपरा में किसी जाति, देश एवं राष्ट्र की रीति-नीति, रहन-सहन, जीवनयापन की पद्धति, दार्शनिक चिंतन, आर्थिक विकास, राजनीतिक मान्यताएं, धार्मिक विचार आदि विद्यमान रहते हैं और इन सभी का संबंध संस्कृति से है। अतः संस्कृति ही किसी देश या राष्ट्र की परंपरा का निर्माण करती है और वही उस देश या राष्ट्र के साहित्य को प्रेरणा प्रदान करती है। इस दृष्टि से संस्कृति एक ऐसी सुदृढ़ नींव है जिस पर साहित्य का विशाल भवन तैयार होता है।

कोई संस्कृति किसी साहित्य को किस तरह प्रभावित किया करती है तथा कोई साहित्य किसी संस्कृति से किस प्रकार प्रेरणा ग्रहण किया करता है- इस प्रश्न पर विचार करने से यह ज्ञात होता है कि जिस राष्ट्र की जैसी संस्कृति होती है उसका साहित्य भी उसी प्रकार के विचारों एवं भावों से ओतप्रोत होता है। फारसी साहित्य का अनुशीलन करने पर यह ज्ञात होता है कि उसमें भौतिक प्रेम का प्राधान्य है और सुरा, साकी एवं इश्क का ही बोलबाला है। इसका मूल कारण यह है कि फारस प्रदेश के लोग अध्यात्म की ओर ध्यान न देकर भौतिक सुखों पर ज्यादा ध्यान देते हैं। ऐसे ही अंग्रेजी संस्कृति में भी भौतिकता का प्राधान्य है, क्योंकि अंग्रेज भी आध्यात्मिकता की अपेक्षा भौतिकता को अधिक महत्व देते हैं। इसी कारण अंग्रेजी साहित्य में भौतिक सुख-समृद्धि और प्राकृतिक सुषमा का अत्यंत सुंदर और रोचक निरूपण हुआ है। इनके ठीक विपरीत भारतीय संस्कृति त्यागपूर्ण भोग से ओतप्रोत है क्योंकि यही तो 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः' का आदर्श रहा है अर्थात् त्याग साहित भोग को महत्व दिया गया है। इसी कारण यहां भौतिकता के साथ साथ पारलौकिक आनन्द को भी महत्व दिया गया है और आध्यात्मिकता का भी महत्व स्वीकार किया गया है। भारतीय संस्कृति की यही छाप भारतीय साहित्य पर भी विद्यमान है। क्योंकि भारतीय साहित्य में भी लौकिक सुख समृद्धि के साथ-साथ पारलौकिक आनन्द का भी बड़ा ही रोचक निरूपण हुआ है। भौतिकता के साथ साथ आध्यात्मिकता का भी अत्यन्त सजीव चित्रण हुआ है और अभ्युदय के साथ साथ निःश्रेयस का भी अत्यन्त मनोहारी वर्णन मिलता है। अतः जिस देश की जैसी संस्कृति होती है उस देश का वैसा ही साहित्य होता है।

संस्कृति केवल साहित्य की प्रेरणा स्रोत ही नहीं है अपितु वह साहित्य की जननी भी है। जैसे माता के अधिकांश गुण उसकी संतान में सहज ही आ जाते हैं वैसे ही संस्कृति की अधिकांश विशेषताएं उसके साहित्य में भी आती हैं। दूसरी तरफ, जहां कोई संस्कृति किसी साहित्य की प्रेरणा एवं रचना का अक्षय भण्डार होती है, वहां साहित्य भी किसी संस्कृति का जीवनाधार होता है। यदि किसी संस्कृति का साहित्य नहीं होता है तो वह कुछ काल के उपरांत पूर्णतया नष्ट हो जाती है क्योंकि साहित्य में ही उस संस्कृति के भाव एवं विचार सुरक्षित रहते हैं और इसी कारण से बेबीलोनिया, असीरिया आदि देशों के संस्कृत का विनाश हो गया था। प्रायः किसी देश की संस्कृति का ज्ञान वहाँ के वास्तु, शिल्प, चित्र, शिलालेख, ताम्रपत्र आदि से भी चल जाता है, परंतु किसी देश की संस्कृति को जानने का प्रमुख साधन साहित्य ही होता है क्योंकि साहित्य में उस देश का रहन-सहन, रीति-नीति, आर्थिक एवं धार्मिक आस्थाएं, भौतिक ज्ञान-विज्ञान आदि का विवरण अधिक गहनता एवं तत्परता के साथ अंकित रहता है। वेदों, आरण्यकों, ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों, पुराणों, इतिहास ग्रंथों, काव्यों आदि में भारतीय संस्कृति की एक अक्षुण्ण परंपरा अंकित है। भारतीय साहित्य की उस अक्षुण्ण धारा ने ही आज भारतीय संस्कृति को संजोये रखा है, उसे अपने अन्तःकरण में स्थान दिया है और अपनी रग-रग में उसके रक्त का संचार जीवित रखा है। यह महत्वपूर्ण कार्य साहित्य के द्वारा ही संपादित हो रहा है, क्योंकि भारतीय संस्कृति के उद्घोषक अनेक शिल्प शत्रुओं द्वारा विध्वंस हो गये। अनेक चित्र काल के गर्त में विलीन हो गये, अनेक शिलालेख धराशायी होकर धूल में मिल गये, अनेक भौतिक अवशेष लुप्त हो गये, परंतु साहित्य की स्रोतस्विनी अविरल गति से आज तक प्रवाहित हो रही है, जो अपनी कल-कल ध्वनि में भारतीय संस्कृति की गरिमा एवं महिमा का स्तवन कर रही है।

साहित्य ही किसी संस्कृति के ज्ञान को संजोए रखती है, वह ज्ञान का साधन होता है। कोई संस्कृत कितनी उन्नत

या अवनत है कितनी उत्कृष्ट एवं निकृष्ट है कितनी भौतिक एवं आध्यात्मिक है, कितनी त्याग एवं भोग प्रधान है, कितनी सहिष्णु एवं असहिष्णु है, कितनी श्रेयमयी एवं प्रेममयी है, कितनी गुणमयी एवं अवगुणमयी है, कितनी सांप्रदायिक एवं असांप्रदायिक है, कितनी उदार एवं संकुचित है, कितनी मानवतावादी या अमानवतावादी है आदि बातों का पता उसके साहित्य से ही चलता है। जब हम भारतीय वाङ्मय का अनुशीलन करके देखते हैं तो यह पाते हैं कि भारतीय संस्कृति भौतिकता की अपेक्षा अधिक आध्यात्मिक है, भोग की अपेक्षा अधिक त्यागमयी है, प्रेम की अपेक्षा अधिक श्रेयमयी है तथा संकुचित होने की अपेक्षा अधिक उदार है। भारतीय वाङ्मय में संसार को असत्य मानकर इहलोक की अपेक्षा परलोक को अधिक महत्वपूर्ण बताया गया है। सभी मानव को एक ही आत्मा का अंश मानकर सबके प्रति सहिष्णुता, सहृदयता एवं उदारता के भावों को अपनाने का उपदेश दिया गया है। अतएव भारतीय साहित्य के अध्ययन से भारतीय संस्कृति का ज्ञान समुचित रूप में प्राप्त हो जाता है। ऐसे ही मुस्लिम संस्कृति की जानकारी प्राप्त करने के लिए यदि हम मुस्लिम साहित्य का अनुशीलन करें तो स्पष्ट पता चलता है कि मुस्लिम संस्कृति भोग प्रधान है और उसके साहित्य में इश्क, आशिक, साकी मयखाने का वर्णन है। साथ ही मुस्लिम संस्कृति में धार्मिक दृढ़ता एवं कट्टरता की भावना अधिक दिखाई पड़ती है। ऐसे ही अंग्रेजी साहित्य का अनुशीलन करने पर अंग्रेजी संस्कृति का भी भली प्रकार ज्ञान प्राप्त हो सकता है। अंग्रेजी साहित्य इस बात का साक्षी है कि अंग्रेजी संस्कृति में राष्ट्रीयता की भावना, विश्वबन्धुत्व, वैज्ञानिक आविष्कार और मानवता का आधिक्य है। अतः संस्कृति के अनेक गुणों एवं अवगुणों का पता सदैव साहित्य के अनुशीलन से चल जाता है।

साहित्य ही किसी संस्कृति का प्रचारक होता है। जब किसी संस्कृति के अनुयायी साहित्य ग्रंथ किसी अन्य देश में पहुंचते हैं, तब वे अपने साथ अपनी उन सब विशेषताओं को भी ले जाते हैं, जो उन्हें उनकी संस्कृति से प्राप्त होती है। भारतीय संस्कृत के अनुयायी वेद, गीता, रामायण, महाभारत, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, रामचरितमानस, कामायनी आदि गौरव ग्रंथों का अध्ययन जैसे-जैसे विदेशों में अधिकाधिक हुआ, वैसे ही वैसे भारतीय संस्कृति के गूढ़ातिगूढ़ रहस्यों से विदेशी जनता परिचित हुई और भारतीय संस्कृति के दिव्य एवं भव्य विचार देश देशांतरों में फैले। ऐसे ही इस्लाम संस्कृति में निर्मित शेख सदी का शाहनामा, उमर खैय्याम की रूबाइयां, अमीर खुसरो के दीवान, मीर, गालिब, इकबाल, फैज आदि के काव्य संग्रहों ने इस्लाम संस्कृति का अत्यधिक प्रचार किया। इसी प्रकार अंग्रेजी संस्कृति में पल्लवित शेक्सपीयर, मिल्टन, वर्ड्सवर्थ, कीट्स, शेली आदि लेखकों द्वारा निर्मित साहित्य ने अंग्रेजी संस्कृति का प्रचार किया। अतः जहाँ-जहाँ वह साहित्य पढ़ा जाता है, वहाँ-वहाँ उस साहित्य में विद्यमान उस संस्कृति के विचार अपना प्रभाव डालने लगते हैं। यही कारण है कि साहित्य किसी न किसी संस्कृति का प्रचारक होता है।

भाषा, साहित्य और संस्कृति का संबंध अत्यंत सुदृढ़ है। भाषा एवं साहित्य का संस्कृति से इस अटूट बंधन को देखकर स्पष्ट पता चलता है कि संस्कृति यदि असीम सागर है तो साहित्य और भाषा वह मेघ हैं जो संस्कृत के सागर से ही अपना रूप ग्रहण कर दिग्दिगंत में वर्षा करके अपनी संस्कृति के गहन विचारों से जनसाधारण को अवगत कराता है। इसी प्रकार संस्कृति यदि हिमगिरि की उन्नत एवं उत्तुंग हिमाच्छादित शिखर है तो भाषा और साहित्य उस पर्वत शिखर से प्रवाहित होने वाली कल-कल निनादिनी स्रोतस्विनी हैं जो अपने शीतल मधुर एवं गुणकारी सलिल रूपी भावों एवं विचारों से सतत् जनकल्याण में लीन रहती है। वास्तव में भाषा एवं साहित्य दोनों को ही संस्कृति का संबल प्राप्त होता है, तभी वह लोकहित में लीन रहता है, तभी वह सहृदयों के जनमानस को आह्लादित करता है और तभी वह रसास्वादन का सर्वोत्कृष्ट साधन बनकर रसिकों को आनन्द विभोर बनाया करता है। यही कारण है कि संस्कृति के बिना साहित्य और भाषा पंगु है तथा साहित्य और भाषा के बिना संस्कृत अंधी है। जिस समय इनका समुचित संयोग होता है, उसी समय भाषा के माध्यम से साहित्य की शीतल लहर अपनी शीतलता, सरसता, सुमधुरता से जनजीवन को आह्लादपूर्ण बनाया करती है। अतः साहित्य और संस्कृत का, साथ ही भाषा और संस्कृति का अन्योन्याश्रित संबंध है, जो युग-युगान्तरों से जन-जीवन को अधोगर्त से उठाकर महिमामंडित उन्नत शिखर की ओर ले जाने में प्रयत्नशील है। ●